SYLLABUS

Class: - B.Com/BBA/BAJMC - II Year
Subject: - Hindi

Unit	Contents
UNIT – I	1. समसामयिक सन्दर्भः श्रीमद्भगवद्गीता – कर्मयोग 2. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला परिचय पाठ : जागो फिर एक बार (दो) (कविता) 3. अमरकान्त परिचय पाठ : दोपहर का भोजन (कहानी) – 4. महादेवी वर्मा परिचय पाठ : गिल्लू (रेखाचित्र) **नियत कार्य :– रामायण के मुख्य पात्रों के नाम लिखिए और जो पात्र आपको पसंद आया उसका उल्लेख किजिए।**
UNIT – II	1. हजारी प्रसाद द्विवेदी : परिचय पाठ : नाखून क्यों बढ़ते हैं (ललित निबन्ध) 2. मध्य प्रदेश की लोककलाएँ (संकलित) 3. मध्य प्रदेशकालोकसाहित्य (संकलित) **नियत कार्य :– मालवा के लोक कला के किसी भी एक विषय पर पोस्टर बनाईए।**
UNIT – III	1. मुहावरे और कहावतें (भाषा) 2. समासरू परिभाषा और भेद (शब्द––रचना / व्याकरण) 3. बीज शब्द (Key Words /अवधारणा मूलक शब्द) उद्योगः सभ्यता संस्कृतिः शिक्षाः सूचना–समाज

renaissance

Unit -1

अध्याय 3 – कर्मयोग

BG 3.1

अर्जुन ने कहा – हे जनार्दन, हे केशव! यदि आप बुद्धि को सकाम कर्म से श्रेष्ठ समझते हैं तो फिर आप मुझे इस घोर युद्ध में क्यों लगाना चाहते हैं?

BG 3.2

आपके व्यामिश्रित (अनेकार्थक) उपदेशों से मेरी बुद्धि मोहित हो गई है | अतः कृपा करके निश्चयपूर्वक मुझे बतायें कि इनमें से मेरे लिए सर्वाधिक श्रेयस्कर क्या होगा?

BG 3.3

श्रीभगवान् ने कहा – हे निष्पाप अर्जुन! मैं पहले ही बता चुका हूँ कि आत्म-साक्षात्कार का प्रयत्न करने वाले दो प्रकार के पुरुष होते हैं | कुछ इसे ज्ञानयोग द्वारा समझने का प्रयत्न करते हैं, तो कुछ भक्ति-मय सेवा के द्वारा |

BG 3.4

न तो कर्म से विमुख होकर कोई कर्मफल से छुटकारा पा सकता है और न केवल संन्यास से सिद्धि प्राप्त की जा सकती है |

BG 3.5

प्रत्येक व्यक्ति को प्रकृति से अर्जित गुणों के अनुसार विवश होकर कर्म करना पड़ता है, अतः कोई भी क्षणभर के लिए भी बिना कर्म किये नहीं रह सकता |

BG 3.6

जो कर्मेन्द्रियों को वश में तो करता है, किन्तु जिसका मन इन्द्रियविषयों का चिन्तन करता रहता है, वह निश्चित रूप से स्वयं को धोखा देता है और मिथ्याचारी कहलाता है |

BG 3.7

दूसरी ओर यदि कोई निष्ठावान व्यक्ति अपने मन के द्वारा कर्मेन्द्रियों को वश में करने का प्रयत्न करता है और बिना किसी आसक्ति के कर्मयोग (कृष्णभावनामृत में) प्रारम्भ करता है, तो वह अति उत्कृष्ट है |

BG 3.8

अपना नियत कर्म करो, क्योंकि कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है | कर्म के बिना तो शरीर-निर्वाह भी नहीं हो सकता |

renaissance
renaissance

BG 3.09

श्रीविष्णु के लिए यज्ञ रूप में कर्म करना चाहिए, अन्यथा कर्म के द्वारा इस भौतिक जगत् में बन्धन उत्पन्न होता है | अतः हे कुन्तीपुत्र! उनकी प्रसन्नता के लिए अपने नियत कर्म करो | इस तरह तुम बन्धन से सदा मुक्त रहोगे |

BG 3.10

सृष्टि के प्रारम्भ में समस्त प्राणियों के स्वामी (प्रजापति) ने विष्णु के लिए यज्ञ सहित मनुष्यों तथा देवताओं की सन्ततियों को रचा और उनसे कहा, "तुम इस यज्ञ से सुखी रहो क्योंकि इसके करने से तुम्हें सुखपूर्वक रहने तथा मुक्ति प्राप्त करने के लिए समस्त वांछित वस्तुएँ प्राप्त हो सकेंगी |"

BG 3.11

यज्ञों के द्वारा प्रसन्न होकर देवता तुम्हें भी प्रसन्न करेंगे और इस तरह मनुष्यों तथा देवताओं के मध्य सहयोग से सबों को सम्पन्नता प्राप्त होगी |

BG 3.12

जीवन की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाले विभिन्न देवता यज्ञ सम्पन्न होने पर प्रसन्न होकर तुम्हारी सारी आवश्यकताओं की पूर्ति करेंगे | किन्तु जो इन उपहारों को देवताओं को अर्पित किये बिना भोगता है, वह निश्चित रूप से चोर है |

BG 3.13

भगवान् के भक्त सभी प्रकार के पापों से मुक्त हो जाते हैं, क्योंकि वे यज्ञ में अर्पित किये भोजन (प्रसाद) को ही खाते हैं | अन्य लोग, जो अपनी इन्द्रियसुख के लिए भोजन बनाते हैं, वे निश्चित रूप से पाप खाते हैं |

BG 3.14

सारे प्राणी अन्न पर आश्रित हैं, जो वर्षा से उत्पन्न होता है | वर्षा यज्ञ सम्पन्न करने से होती है और यज्ञ नियत कर्मों से उत्पन्न होता है |

BG 3.15

वेदों में नियमित कर्मों का विधान है और ये साक्षात् श्रीभगवान् (परब्रह्म) से प्रकट हुए हैं | फलतः सर्वव्यापी ब्रह्म यज्ञकर्मों में सदा स्थित रहता है |

BG 3.16

हे प्रिय अर्जुन! जो मानव जीवन में इस प्रकार वेदों द्वारा स्थापित यज्ञ-चक्र का पालन नहीं करता वह निश्चय ही पापमय जीवन व्यतीत करता है | ऐसा व्यक्ति केवल इन्द्रियों की तुष्टि के लिए व्यर्थ ही जीवित रहता है |

renaissance
renaissance

BG 3.17

जो सारे शरीर में व्याप्त है उसे ही अविनाशी समझो | उस अव्यय आत्मा को नष्ट करने में कोई भी समर्थ नहीं है |

BG 3.18

स्वरुपसिद्ध व्यक्ति के लिए न तो अपने नियत कर्मों को करने की आवश्यकता रह जाती है, न ऐसा कर्म न करने का कोई कारण ही रहता है | उसे किसी अन्य जीव पर निर्भर रहने की आवश्यकता भी नहीं रह जाती |

BG 3.19

अतः कर्मफल में आसक्त हुए बिना मनुष्य को अपना कर्तव्य समझ कर निरन्तर कर्म करते रहना चाहिए क्योंकि अनासक्त होकर कर्म करने से परब्रह्म (परम) की प्राप्ति होती है |

BG 3.20

जनक जैसे राजाओं ने केवल नियत कर्मों को करने से ही सिद्धि प्राप्त की | अतः सामान्य जनों को शिक्षित करने की दृष्टि से तुम्हें कर्म करना चाहिए |

BG 3.21

महापुरुष जो जो आचरण करता है, सामान्य व्यक्ति उसी का अनुसरण करते हैं | वह अपने अनुसरणीय कार्यों से जो आदर्श प्रस्तुत करता है, सम्पूर्ण विश्व उसका अनुसरण करता है |

BG 3.22

हे पृथापुत्र! तीनों लोकों में मेरे लिए कोई भी कर्म नियत नहीं है, न मुझे किसी वस्तु का अभाव है और न आवश्यकता ही है | तो भी मैं नियत्कर्म करने में तत्पर रहता हूँ |

BG 3.23

क्योंकि यदि मैं नियत कर्मों को सावधानीपूर्वक न करूँ तो हे पार्थ! यह निश्चित है कि सारे मनुष्य मेरे पथ का ही अनुगमन करेंगे |

BG 3.24

यदि मैं नियतकर्म न करूँ तो ये सारे लोग नष्ट हो जायं | तब मैं अवांछित जन समुदाय (वर्णसंकर) को उत्पन्न करने का कारण हो जाऊँगा और इस तरह सम्पूर्ण प्राणियों की शान्ति का विनाशक बनूँगा |

BG 3.25

जिस प्रकार अज्ञानी-जन फल की आसक्ति से कार्य करते हैं, उसी तरह विद्वान जनों को चाहिए कि वे लोगों को उचित पथ पर ले जाने के लिए अनासक्त रहकर कार्य करें |

BG 3.26

विद्वान व्यक्ति को चाहिए कि वह सकाम कर्मों में आसक्त अज्ञानी पुरुषों को कर्म करने से रोके नहीं ताकि उनके मन विचलित न हों | अपितु भक्तिभाव से कर्म करते हुए वह उन्हें सभी प्रकार के कार्यों में लगाए (जिससे कृष्णभावनामृत का क्रमिक विकास हो) |

BG 3.27

जीवात्मा अहंकार के प्रभाव से मोहग्रस्त होकर अपने आपको समस्त कर्मों का कर्ता मान बैठता है, जब कि वास्तव में वे प्रकृति के तीनों गुणों द्वारा सम्पन्न किये जाते हैं |

BG 3.28

हे महाबाहो! भक्तिभावमय कर्म तथा सकाम कर्म के भेद को भलीभाँति जानते हुए जो परमसत्य को जानने वाला है, वह कभी भी अपने आपको इन्द्रियों में तथा इन्द्रियतृप्ति में नहीं लगाता |

BG 3.29

माया के गुणों से मोहग्रस्त होने पर अज्ञानी पुरुष पूर्णतया भौतिक कार्यों में संलग्न रहकर उनमें आसक्त हो जाते हैं | यद्यपि उनके ये कार्य उनमें ज्ञानभाव के कारण अधम होते हैं, किन्तु ज्ञानी को चाहिए कि उन्हें विचलित न करे |

BG 3.30

अतःहे अर्जुन! अपने सारे कार्यों को मुझमें समर्पित करके मेरे पूर्ण ज्ञान से युक्त होकर, लाभ की आकांशा से रहित, स्वामित्व के किसी दावे के बिना तथा आलस्य से रहित होकर युद्ध करो |

BG 3.31

जो व्यक्ति मेरे आदेशों के अनुसार अपना कर्तव्य करते रहते हैं और ईर्ष्यारहित होकर इस उपदेश का श्रद्धापूर्वक पालन करते हैं, वे सकाम कर्मों के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं |

BG 3.32

किन्तु जो ईर्ष्यावश इन उपदेशों की अपेक्षा करते हैं और इनका पालन नहीं करते उन्हें समस्त ज्ञान से रहित, दिग्भ्रमित तथा सिद्धि के प्रयासों में नष्ट-भ्रष्ट समझना चाहिए |

renaissance

BG 3.33

ज्ञानी पुरुष भी अपनी प्रकृति के अनुसार कार्य करता है, क्योंकि सभी प्राणी तीनों गुणों से प्राप्त अपनी प्रकृति का ही अनुसरण करते हैं | भला दमन से क्या हो सकता है?

BG 3.34

प्रत्येक इन्द्रिय तथा उसके विषय से सम्बन्धित राग-द्वेष को व्यवस्थित करने के नियम होते हैं | मनुष्य को ऐसे राग तथा द्वेष के वशीभूत नहीं होना चाहिए क्योंकि ये आत्म-साक्षात्कार के मार्ग में अवरोधक हैं |

BG 3.35

अपने नियतकर्मों को दोषपूर्ण ढंग से सम्पन्न करना भी अन्य के कर्मों को भलीभाँति करने से श्रेयस्कर है | स्वीय कर्मों को करते हुए मरना पराये कर्मों में प्रवृत्त होने की अपेक्षा श्रेष्ठतर है, क्योंकि अन्य किसी के मार्ग का अनुसरण भयावह होता है |

BG 3.36

अर्जुन ने कहा – हे वृष्णिवंशी! मनुष्य न चाहते हुए भी पापकर्मों के लिए प्रेरित क्यों होता है? ऐसा लगता है कि उसे बलपूर्वक उनमें लगाया जा रहा हो |

BG 3.37

श्रीभगवान् ने कहा – हे अर्जुन! इसका कारण रजोगुण के सम्पर्क से उत्पन्न काम है, जो बाद में क्रोध का रूप धारण करता है और जो इस संसार का सर्वभक्षी पापी शत्रु है |

BG 3.38

जिस प्रकार अग्नि धुएँ से, दर्पण धूल से अथवा भ्रूण गर्भाशय से आवृत रहता है, उसी प्रकार जीवात्मा इस काम की विभिन्न मात्राओं से आवृत रहता है ।

BG 3.39

इस प्रकार ज्ञानमय जीवात्मा की शुद्ध चेतना उसके काम रूपी नित्य शत्रु से ढकी रहती है जो कभी भी तुष्ट नहीं होता और अग्नि के समान जलता रहता है |

BG 3.40

इन्द्रियाँ, मन तथा बुद्धि इस काम के निवासस्थान हैं | इनके द्वारा यह काम जीवात्मा के वास्तविक ज्ञान को ढक कर उसे मोहित कर लेता है |

renaissance

BG 3.41

इसलिए हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ अर्जुन! प्रारम्भ में ही इन्द्रियों को वश में करके इस पाप का महान प्रतीक (काम) का दमन करो और ज्ञान तथा आत्म-साक्षात्कार के इस विनाशकर्ता का वध करो ।

BG 3.42

कर्मेन्द्रियाँ जड़ पदार्थ की अपेक्षा श्रेष्ठ हैं, मन इन्द्रियों से बढ़कर है, बुद्धि मन से भी उच्च है और वह (आत्मा) बुद्धि से भी बढ़कर है ।

BG 3.43

इस प्रकार हे महाबाहु अर्जुन! अपने आपको भौतिक इन्द्रियों, मन तथा बुद्धि से परे जान कर और मन को सावधान आध्यात्मिक बुद्धि (कृष्णभावनामृत) से स्थिर करके आध्यात्मिक शक्ति द्वारा इस काम-रूपी दुर्जेय शत्रु को जीतो |

renaissance
renaissance

Chapter -2

सूर्यकांत त्रिपाठी निराला का जीवन परिचय

नाम	सूर्यकांत त्रिपाठी निराला
उपनाम	निराला
जन्म	21 फरवरी 1896
आयु	62 वर्ष
जन्म स्थान	महिसागर जिला मेदनीपुर पश्चिम बंगाल
पिता का नाम	पंडित राम सहाय
माता का नाम	रुकमणी
पत्नी का नाम	मनोहर देवी
प्रमुख रचनाएं	गीतिका ,तुलसीदास ,राम की शक्ति पूजा ,सरोज स्मृति
पेशा	आर्मी ऑफिसर
बच्चे	एक पुत्री
भाषा	हिंदी, बांग्ला, अंग्रेजी, संस्कृत
निदान	15 अक्टूबर 1961 ईस्वी में प्रयागराज उत्तर प्रदेश

सूर्यकांत त्रिपाठी (Suryakant Tripathi Nirala) निराला का जन्म वसंत पंचमी रविवार 21 फरवरी 1896 के दिन हुआ था, अपना जन्मदिन वसंत पंचमी को ही मानते थे। उनकी एक कहानी संग्रह ‘ लिली’ 21 फरवरी 1899 जन्म तिथि पर ही प्रकाशित हुई थी। रविवार को इनका जन्म हुआ था इसलिए वह सूर्ज कुमार के नाम से जाने जाते थे। उनके पिताजी का नाम पंडित राम सहाय था वह सिपाही की नौकरी करते थे। उनकी माता का नाम रुक्मणी था जब निराला जी 3 साल के थे तब उनकी माता की मृत्यु हो गई थी उसके बाद उनके पिता ने उनकी देखभाल की।

शिक्षा

उनकी प्रारंभिक शिक्षा महिषादल हाई स्कूल से हुई थी परंतु उन्हें वह पद्धति में रुचि नहीं लगी। फिर इनकी शिक्षा बंगाली माध्यम से शुरू हुई। हाई स्कूल की पढ़ाई पास करने के बाद उन्होंने घर पर रहकर

ही संस्कृत ,अंग्रेजी साहित्य का अध्ययन किया था।जिसके बाद वह लखनऊ और फिर उसके बाद गढकोला उन्नाव आ गए थे। शुरुआत के समय से ही उन्हें रामचरितमानस बहुत अच्छा लगता था। उन्हें बहुत सारी भाषाओं का निपुण ज्ञान था: हिंदी ,बांग्ला ,अंग्रेजी, संस्कृत। श्री रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, रविंद्र नाथ टैगोर से वह अधिक रूप से प्रभावित थे। उन्हें पढ़ाई से ज्यादा मन खेलने ,घूमने, तेरने और कुश्ती लड़ने में लगता था।

विवाह

जब निराला जी की 15 वर्ष की आयु थी तभी उनका विवाह मनोहरा देवी से हो गया था। मनोरमा देवी रायबरेली जिले के डायमंड के प. राम दयाल की पुत्री थी ,वह बहुत ही शिक्षित थी और उन्होंने संगीत का अभ्यास भी किया था। फिर उन्होंने हिंदी सीखी ,इसके पश्चात बांग्ला के बजाय हिंदी में कविता लिखना शुरू किया। परंतु 20 वर्ष की आयु में ही उनकी पत्नी की मृत्यु हो गई थी। उनके पुत्री जो विधवा थी फिर उसकी भी मृत्यु हो गई थी।

पारिवारिक विपत्तियां

उनके जीवन में 16 – 17 वर्ष की उम्र से ही विपत्तियां आनी शुरू हो गई थी। उन्हें कई सारी प्रकार की देवी, सामाजिक, साहित्यिक संगोष्ठी से गुजरना पड़ा था ।परंतु आखिर तक उन्होंने अपने लक्ष्य को छोड़ा नहीं था। जब वह 3 साल के थे तब उनकी माता की मृत्यु हो गई थी। और सामाजिक रूप से उनका पिताजी का निधन भी हो गया था साथ ही 20 साल की उम्र में उनकी पत्नी की मृत्यु भी हो गई थी। पहले महायुद्ध के बाद जो महामारी फैली थी उनमें उनकी पत्नी के साथ चाचा ,भाई ,भाभी की भी मृत्यु हो गई थी। पत्नी की मृत्यु के बाद बहुत टूट से गए थे परंतु आखिर तक उन्होंने अपना मार्ग विचलित नहीं किए अपने लक्ष्य को पूरा किए। कुछ समय पश्चात उन्होंने महिषादल के राजा के पास नौकरी शुरू की थोड़े समय बाद उन्होंने वह नौकरी भी छोड़ दी। उसके बाद उन्होंने रामकृष्ण मिशन के पत्रिका समन्वय के संपादन के कार्य में काम करना शुरू किया।

कार्य क्षेत्र

उन्होंने पहली नियुक्ति महिषादल राज्य में की थी उसके पश्चात उन्होंने 1918 से 1922 तक यहां पर नौकरी की। इसके पश्चात व संपादन, अनुवाद कार्य और स्वतंत्र लेखन में प्रवृत्त हो गए। इस दौरान उन्होंने कई सारे कार्य किए, 1922 से 1932 के बीच कोलकाता में प्रसिद्ध हुए समन्वय का संपादन किया साथ ही 1923 अगस्त से मतवाला संपादक मंडल में भी कार्य किया था। फिर उन्होंने लखनऊ में गंगा पुस्तक माला

कार्यालय में मासिक पत्रिका सुधा 1934 के मध्य के साथ संबंध में रहे थे। कुछ समय उन्होंने लखनऊ में ही बिताया 1934 से 1940 तक, 1942 से मृत्यु तक इलाहाबाद में रहकर यह उन्होंने अनुवाद कार्य साथ ही स्वतंत्र लेखन का कार्य किया था।

- उनकी सबसे पहली कविता जन्मभूमि प्रभा नामक मासिक पत्र 1920 जून में प्रकाशित हुई ।
- इनकी सबसे पहली कविता संग्रह 1923 अनामिका प्रकाशित हुई थी।
- 1920 अक्टूबर में सबसे पहला निबंध बंग भाषा का उच्चारण मासिक पत्रिका सरस्वती में प्रकाशित हुई थी।

सूर्यकांत त्रिपाठी निराला की रचनाएँ

1920 ई के आसपास उन्होंने अपना लेखन कार्य शुरू किया था। उनकी सबसे पहली रचना एक गीत जन्म भूमि पर लिखी गई थी। 1916 ई मैं उनके द्वारा लिखी गई ‘ जूही की कली ‘ बहुत ही लंबे समय तक का प्रसिद्ध रही थी और 1922 ई मैं प्रकाशित हुई थी।

काव्य संग्रह–

- अनामिका (1923)
- परिमल (1930)
- गीतिका (1936)
- अनामिका (द्वितीय)
- तुलसीदास (1939)
- कुकुरमुत्ता (1942)
- अणिमा (1943)
- बेला (1946)
- नये पत्ते (1946)
- अर्चना(1950)
- आराधना (1953)
- गीत कुंज (1954)
- सांध्य काकली
- अपरा (संचयन)

उपन्यास–

- अप्सरा (1931)
- अलका (1933)
- प्रभावती (1936)
- निरुपमा (1936)
- कुल्ली भाट (1938-39)
- बिल्लेसुर बकरिहा (1942)
- चोटी की पकड़ (1946)
- काले कारनामे (1950)
- चमेली
- इन्दुलेखा
- कहानी संग्रह
- लिली (1934)
- सखी (1935)
- सुकुल की बीवी (1941)
- चतुरी चमार (1945)
- देवी (1948)

निबंध–

- रवीन्द्र कविता कानन (1929)
- प्रबंध पद्म (1934)
- प्रबंध प्रतिमा (1940)
- चाबुक (1942)
- चयन (1957)
- संग्रह (1963)

कहानी संग्रह–

- लिली (1934)
- सखी (1935)
- सुकुल की बीवी (1941)

- चतुरी चमार (1945)
- देवी (1948)

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'- जागो फिर एक बार (कविता)

जागो फिर एक बार' कविता के रचयिता सूर्यकांत त्रिपाठी निराला जी है। निराला जी की यह कविता 'परिमल' कविता संग्रह में संकलित है। जिसका प्रकाशन 1930 में हुआ था। इस कविता में कवि ने भारत के अतीत का गौरवमय चित्रण किया है। इसी संदर्भ में कवि भारतियों को जागते रहने का संदेश देते हुए कहते हैं

जागो फिर एक बार (कविता)

जागो फिर एक बार!
समर अमर कर प्राण,
गान गाये महासिन्धु-से सिन्धु-नद-तीरवासी!
सैन्धव तुरंगों पर चतुरंग चमू संग;
"सवा-सवा लाख पर एक को चढ़ाऊंगा
गोविन्द सिंह निज नाम जब कहाऊंगा"
किसने सुनाया यह
वीर-जन-मोहन अति दुर्जय संग्राम राग,
फाग का खेला रण बारहों महीने में?
शेरों की मांद में आया है आज स्यार
जागो फिर एक बार।
सत् श्री अकाल, भाल-अनल धक-धक कर जला
भस्म हो गया था काल-
तीनों गुण- ताप त्रय,
अभय हो गए थे तुम
मृत्युंजय व्योमकेश के सामान,
अमृत-संतान तीव्र
भेदकर सप्तावरण-मरण-लोक शोकाहारी।
पहुँचे थे वहाँ जहाँ आसान है सहत्रसार

जागो फिर एक बार।
सिंहनी की गोद से छीनता रे शिशु कौन?
मौन भी क्या रहती वह रहते प्राण?
रे अजान।
एक मेषमाता ही रहती है निर्निमेष
दुर्बल वह-छिनती सन्तान जब
जन्म पर अपने अभिशप्त
तप्त आँसू बहाती है;
किन्तु क्या
योग्य जन जीता है
पश्चिम की उक्ति नहीं
गीता है गीता है
स्मरण करो बार-बार
जागो फिर एक बार
पशु नहीं, वीर तुम, समर-शुर, क्रूर नहीं,
काल चक्र में हो दबे आज तुम राज कुंवर!
समर-सरताज! पर क्या है,
सब माया है-सब माया है,
मुक्त हो सदा ही तुम,
बाधा-विहीन-बन्ध छन्द ज्यों,
डूबे आनन्द में सच्चितान्द रूप
महामंत्र ऋषियों का
अणुओं-परमाणुओं में फेंका हुआ
"तुम हो महान,,तुम सदा हो महान,
है नश्वर यह दीन भाव,
कायरता, कामपरता।
ब्रह्म हो तुम
पद-रज-भर भी नहीं पूरा यह विश्व भार-

जागो फिर एक बार।

व्यख्या : जागो फिर एक बार समर में ....

आया है आज स्याह जागो फिर एक बार

कविता में कवि भारत के अतीत की गौरव-गाथा को स्मरण करते हुए देशवासियों को नई उत्साह और ओजस्विता को अपनाने के लिए प्रेरित करते हैं। वे ऐतिहासिक परिवेश की ओर संकेत करते हुए कहते हैं कि भारत का अतीत बहुत ही गौरवशाली था। हमारे यहाँ के वीर युद्ध-क्षेत्र में प्राणों की बाजी लगाकर अमरत्व को प्राप्त हो जाते थे। ऐसे ही वीर योद्धाओं की गौरव गाथा का गुणगान करते हैं। यहाँ के समुंद्र के विशाल नदियों और उनके तटों पर रहने वाले लोगों अथार्त सिन्धु सभ्यता के लोगों ने भी अनेक बार गाया था। इसलिए जब-जब विदेशी आक्रान्ताओं ने भारत पर आक्रमण किया है। तब-तब यहाँ के वीरों ने चतुरंगी सेना के साथ उनका डटकर मुकाबला किया। इसी तरह जब विदेशियों ने आक्रमण किया तब गुरु गोबिंद सिंह जी ने यह घोषणा किया था कि- "सवा-सवा लाख पर एक को चढ़ाऊंगा।" अथार्त "जब तक सवा-सवा लाख शत्रुओं पर अपने एक वीर को समर्पित नहीं करूंगा तब-तक मैं अपने नाम को सार्थक नहीं मानूंगा।" कवि कहते है कि वीर लोग इस राग को सुनकर और भी उत्साह से झूमने लगते है। इस राग से वीर योद्धाओं में दो गुणा शक्ति बढ़ जाता था। अथार्त शत्रु उनपर विजय नहीं पा सकते थे। गुरु गोबिंद सिंह और उनके योद्धा बारह महीनों तक खून की होली खेलते थे। आज भी गुरु गोबिंद सिंह जैसे शेर है किन्तु आज उन शेरों के माँद में शियार घूस गया है इन्हें मारने के लिए। हे! भारतीय वीरों अब तुम जागों और सतर्कता के साथ उनसे सामना करों। उसका दमन करों।

व्यख्या : सत् श्री अकाल, भाल-अनल..........

जहाँ असान है सहस्त्रार, जागों फिर एक बार

कवि मातृभूमि के खातिर बलिदान होने वाले सिक्ख वीरों की प्रशंसा करते हुए कहते है कि मुगलों के विरुद्ध गुरु गोबिंदसिंह जी ने जब 'सत्य श्रीअकाल' का घोस करते हुए युद्ध क्षेत्र में उतरे तब उनके ललाट पर क्रोध रूपी आग की ज्वाला प्रज्वलित हो रही थी। उस धधकती हुई आग में काल भस्म हो गया था। तीनों गुण अथार्त सतोगुण, रजोगुण और तमोंगुण तथा दैविक, दैहिक और भौतिक ये तीनों ताप भी भस्म हो गए थे। हे! भारतवासियों जिसके परिणामस्वरुप तुम शत्रुओं से अभय हो गए थे। उस समय तुम मृत्यु को जितने वाले देव शिवाजी के सामान बन गए थे। तुम योग साधना के द्वारा सातों आवरणों को भेदकर तथा समस्त शोक से रहित होकर उस उच्चतम स्था के अधिकारी बन गए थे जहाँ पर सिद्ध योगी लोग सांसारिक कष्टों से मुक्त होकर, सहस्त्र-दल कमल पर आसन लगाकर परमानंद में लिन हो जाते हैं। इसलिए तुम फिर से एक बार जागकर उसी शौर्य का प्रदर्शन करो।

व्यख्या : सिंहनी की गोद से छीनता रे शिशु कौन?.........
स्मरण करों बार-बार जागो फिर एक बार।

इन पंक्तियों में कवि ने वीरों को वसुंधरा की दुहाई देकर देशभक्ति का ओजस्वी स्वर व्यक्त किया है। कवि कहते है कि इस तरह की शक्ति और साहस किस्मे है जो शेरनी के गोद से उसके बच्चे को बलपूर्वक छीन सके क्या शेरनी जीते-जी अपने बच्चे को छीनने देगी और वह छुओ बैठी रहेगी? अथार्त सिंहनी ऐसा तब तक नहीं होने देगी जबतक उसके प्राण रहेंगे कवं भेद ही ऐसी होती है जो अपने बच्चे को गोद से छीने जाने के बाद चुप रहती है वह दुर्बल होने के कारण अपने बच्चे के छीने जाने के बाद भी टकटकी लगाकर देखती रहती है वह अपने संतान के छीने जाने के बाद जीवन भर दुखी होकर आँसू बहाती रहती है अपने व्यथित जीवन पर रोटी रहती है। क्या शक्तिशाली प्राणी इस तरह के अत्याचार को सहकर जीवित रह सकता है? अथार्त नहीं वह अत्याचार सहने से की अपेक्षा मर जाना अच्छा समझेगा। आते तो यही है कि शक्तिशाली व्यक्ति ही जीवित रहता है। यह उक्ति पाश्चात चिंतन की दें नहीं है, यह तो गीता का उपदेश है अतः गीताके कर्मयोग के उपदेश में बार-बार स्मरण करो जागो और जागकर तुम अपने शक्तिशाली स्वरुप को पहचानों।

व्यख्या : पशु नहीं, वीर तुम, समर-शूर, क्रूर नहीं ....
पड़ रज भर भी नहीं पूरा यह विश्व-भार।
जागो फिर एक बार।

इन पक्तियों में कवी ने भारतवासियों को उनकी शक्ति का स्मरण कराते हुए कहते है कि तुम पशु नहीं हो तुम युद्ध में पराक्रम दिखाने वाले वीर योद्धा हो, तुम क्रूर आचरण करने वाले नहीं हो तुम तो न्याय के लिए वीरता का प्रदर्शन करने वाले हो तुम कालरुपी चक्र में दबे हुए राजकुमार हो तथा युद्धक्षेत्र के श्रेष्ठ योद्धा हो परन्तु तुम इस तरह क्यों हो? लोकाचार तो माया के बंधन है और तुम हमेशा ही इस सबसे मुक्त रहे हो। जिस प्रकार बाधाओं से अथार्त यति, विराम, लघु और गुरु आदि नियमों के बंधन से मुक्त रहने वाले अथार्त मुक्त छन्द कविता भावपूर्ण लगती है वैसे ही तुम सदा संसारिकता से मुक्त रहकर सच्चितान्न्द अथार्त परंब्रहम के निमग्न रहते हो। इस देश के कण-कण में अणु-परमाणुओं में ऋषियों के महामंत्र व्याप्त हैं जो मानव के सुखद एवं मुक्ति प्रदान करने वाले हैं इसलिए हे! भारतवासियों तुम सदा से ही महान रहे हो तुम्हारे मन में जो दीनता, कायरता की भावना तथा काम वासनाओं की आसक्ति के भाव उत्पन्न होते रहें है वे सभी नष्ट होने वाले है। अतः तुम ब्रह्मस्वरूप हो यह समस्त विश्व तुम्हारे चरणों की धूल से भी तुच्छ है। आशय यह है कि तुम परमात्मा की सृष्टि के सर्वाधिक सबसे शक्तिशाली प्राणी हो अतएव तुम अपनी शक्ति को पहचानों और फिर से जाग जाओ।

'जागो फिर एक बार' कविता एक संबोधन गीत है। कवि अपने इस गीत के द्वारा भारतीय नव युवकों को संबोधित करके उनके पराक्रम को जगाने का प्रयास कर रहे

Chapter -3

अमरकांत का जन्म उत्तर प्रदेश के बलिया जिले के नगरा गॉव में हुआ था। उनका मूल नाम श्रीराम वर्मा था उनकी आरंभिक शिक्षा में हुई। तत्पश्चात् उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से बी.ए. की डिग्री प्राप्त की। साहित्य–सृजन में उनकी बचपन से ही रुचि थी, किशोरावस्था तक आते–आते उन्होंने कहानी–लेखन प्रारंभ कर दिया था। अमरकांत ने अपने साहित्यिक जीवन की शुरुआत पत्राकारिता से की। सबसे पहले उन्होंने आगरा से प्रकाशित होने वाले दैनिक पत्र सैनिक के संपादकीय विभाग में कार्य करना आरंभ किया और यहीं वे प्रतिशील लेखक संघ से भी जुड़े। इसके अतिरिक्त उन्होंने दैनिक अमृत पत्रिका तथा दैनिक भारत के संपादकीय विभागों में भी काम किया। कुछ समय तक वे कहानी पत्रिाका के संपादन से भी जुड़े रहे। अमरकांत नयी कहानी आंदोलन के प्रमुख कहानीकार हैं। उन्होंने अपनी कहानियों में शहरी और ग्रामीण जीवन का यथार्थ चित्रण किया है। वे मुख्यतः मध्यवर्ग के जीवन की वास्तविकता और विसंगतियों को व्यक्त करने वाले कहानीकार हैं। वर्तमान समाज में व्याप्त अमानवीयता, हृदयहीनता, पाखंड, आडंबर आदि को उन्होंने अपनी कहानियों का विषय बनाया है। आज के सामाजिक जीवन और उसके अनुभवों को अमरकांत ने यथार्थवादी ढंग से अभिव्यक्त किया है। उनकी शैली की सहजता और भाषा की सजीवता पाठकों को आकर्षित करती है। आंचलिक मुहावरों और शब्दों के प्रयोग से उनकी कहानियों में जीवंतता आती है। अमरकांत की कहानियों के शिल्प में पाठकों को चमत्कृत करने का प्रयास नहीं है। वे जीवन की कथा उसी ढंग से कहते हैं, जिस ढंग से जीवन चलता है। अमरकांत की मुख्य रचनाएँ, हैं जिंदगी और जोंक, देश के लोग मौत का नगर मित्र–मिल, कुहासा (कहानी संग्रह) सुखा पत्ता, ग्राम सेविका, काले उजले दिन, सुख जीवी, बीच की दिवार, इन्ही हथियारों से (उपन्यास)। इन्ही हथियारों से उन्हे उपन्यास पर उन्हे 2007 में साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया सन् 2009 भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार श्री लाल शुक्ला से साथ संयुक्त रूप से दिया गया अमरकांत ने बाल साहित्य भी लिखा है।

दोपहर का भोजन पाठ का सार / परिचय

दोपहर का भोजन गरीबी से जूझते एक निम्न मध्यवर्गीय शहरी परिवार की कहानी है। जिसके मुखिया की अचानक नौकरी छूट जाने के कारण परिवार के सामने आर्थिक संकट खड़ा हो जाता है। परिवार के सदस्यों को भरपेट भोजन तक नसीब नहीं हो पा रहा है , पूरे परिवार का संघर्ष भावी उम्मीदों पर टिका है। सिद्धेश्वरी संकट की इस घड़ी में परिवार के सभी सदस्यों को एकजुट एवं चिंता मुक्त रखने का अथक प्रयास करती है।

वह अपने परिवार को टूटने से बचाने का हर संभव प्रयत्न करती है।

सिद्धेश्वरी तथा **मुंशी जी** के परिवार में उनके अतिरिक्त उनके तीन पुत्र हैं। इक्कीस वर्षीय बड़ा बेटा **रामचंद्र** , अट्ठारह वर्षीय मंझला बेटा **मोहन** तथा छह वर्षीय छोटा बेटा **प्रमोद।** रामचंद्र एक स्थानीय दैनिक समाचार पत्र के दफ्तर में प्रूफ्रेडिंग का काम सीखता है तथा नौकरी की तलाश में है। मोहन हाई स्कूल के इम्तिहान की तैयारी कर रहा है।

सिद्धेश्वरी पाठ का जीवंत पात्र हे वह अत्यंत अभाव में अपने परिवार की गाड़ी को खींचे जा रही है। परिवार की स्थिति अत्यंत दयनीय होने पर भी वह परिवार को जोड़ने का पूरा प्रयास करती है। परिवार को जोड़े रखने के लिए वह झूठ का सहारा भी लेती है।

उसका अथक प्रयास रहा है कि घर के सभी सदस्यों को सुख पहुंचाए भले ही स्वयं कष्टों में जीती रहे।

वह परिवार के सदस्यों के सामने एक-दूसरे की कमी ना बता कर उनकी बातों को छुपाती है , ताकि किसी भी सदस्य को मानसिक कष्ट ना हो। यह सभी बातें उसके अपार धैर्य को दर्शाती है। सिद्धेश्वरी ने झूठ बोलकर कोई पाप नहीं किया बल्कि परिवार के सदस्यों को एक दूसरे से जोड़े रखा है।

ऐसा झूठ जो किसी भलाई के लिए बोला जाए उसे बोलने में कोई बुराई नहीं है।

घर के सभी सदस्य रामचंद्र , मोहन तथा मुंशी बारी-बारी भोजन के लिए आते हैं। सभी मन ही मन इस वास्तविकता से परिचित है कि घर में पर्याप्त भोजन नहीं है।

वह सभी कुछ ना कुछ बहाना करके आधे पेट ही भोजन करके उठ जाते हैं।

रामचंद्र के भोजन के दौरान सिद्धेश्वरी के मंझले बेटे मोहन की पढ़ाई की झूठी तारीफ करती है। वह मोहन से झूठ-मूठ कहती है कि रामचंद्र उसकी प्रशंसा करता है। मुंशी जी से भी वह झूठ बोलती है कि रामचंद्र उन्हें देवता के समान कहता है। मकान किराया नियंत्रण विभाग के क्लर्क के पद पर उनकी छंटनी हो चुकी है और आजकल मुंशी जी काम की तलाश में है। मुंशी जी भोजन करते समय सिद्धेश्वरी से नजरें चुराती है , उन्हें मालूम है कि घर में भोजन बहुत कम है और वह स्वयं को इस स्थिति का जिम्मेदार मानते हैं।

भोजन के दौरान सिद्धेश्वरी एवं मुंशी जी अन्य की संबंध बातें करते हैं

जैसे बारिश का ना होना , मक्खियों का होना , फूफा की बीमारी तथा गंगा शरण बाबू की लड़की की शादी हालांकि इन बातों का कोई महत्व नहीं है , फिर भी यह सभी बातें पाठ से जुड़ी हुई है यह सभी बातें उनके मन की व्यथा जीवन के अभाव आदि को दर्शाती है। इन बातों को करके शायद वे मूल विषय गरीबी एवं अभाव से बचना चाहते थे तथा अपने दुखों को कम करना चाहते थे।

सिद्धेश्वरी पर्याप्त भोजन ना होते हुए भी सदस्यों से और भोजन लेने का आग्रह करती है , ऐसा करके वह घर के सदस्यों को गरीबी एवं अभाव का एहसास नहीं होने देना चाहती। वह सदस्यों की एक-दूसरे के विषय में झूठी तारीफ करके गरीबी अभावग्रस्त एवं संघर्ष पूर्ण वातावरण में भी उन्हें एकजुट तथा खुशहाल रखने की कोशिश करती है।

सबको भोजन करवाने के पश्चात सिद्धेश्वरी जब स्वयं भोजन करने बैठती है तो उसके हिस्से थोड़ी सी दाल जरा सी चने की तरकारी तथा मात्र एक रोटी आती है। तब उसे अचानक अपने सबसे छोटे पुत्र प्रमोद का ध्यान आता है , जिसने अभी तक भोजन नहीं किया था। वह आधी रोटी तोड़ कर प्रमोद के लिए रख देती है तथा शेष आधी लेकर भोजन करने बैठ जाती है। पहला ग्रास मुंह में रखते ही उसकी आंखों से आंसू गिरने लगे जो उसकी विवशता को बयान करते हैं।

renaissance

Unit -2

नाख़ून क्यों बढ़ते हैं- हजारी प्रसाद द्विवेदी

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी को ललित निबन्धों का जनक माना जाता है. नाखून क्यों बढ़ते हैं निबन्ध में आचार्य द्विवेदी मनुष्य की पाशविक प्रवृति जैसी दुर्बलताओं की ओर संकेत करते हुए मनुष्य की सृजन सम्बन्धी क्षमताओं को भी सामने लाने का प्रयास करते हैं. इस निबन्ध में जहाँ एक ओर आचार्य द्विवेदी द्वारा पशुत्व का द्योतक भावों को लक्षित किया गया है वहीं दूसरी तरफ वे मनुष्य की करुणा तथा भाईचारे की भावना का भी दर्शन कराते हैं.

बच्चे कभी-कभी चक्कर में डाल देनेवाले प्रश्न कर बैठते हैं। अल्पज्ञ पिता बड़ा दयनीय जीव होता है। मेरी छोटी लड़की ने जब उस दिन पूछ दिया कि आदमी के नाखून क्यों बढ़ते हैं, तो मैं कुछ सोच ही नहीं सका। हर तीसरे दिन नाखून बढ़ जाते हैं, बच्चे कुछ दिन तक अगर उन्हें बढ़ने दें, तो माँ-बाप अक्सर उन्हें डॉटा करते है। पर कोई नहीं जानता कि ये अभागे नाखून क्यों इस प्रकार बढ़ा करते है। काट दीजिए, वे चुपचाप दंड स्वीकार कर लेंगे, पर निर्लज्ज अपराधी की भाँति फिर छूटते ही सेंध पर हाजिर। आखिर ये इतने बेहया क्यों हैं?

कुछ लाख ही वर्षों की बात है, जब मनुष्य जंगली था, वनमानुष जैसा। उसे नाखून की जरूरत थी। उसकी जीवन रक्षा के लिए नाखून बहुत जरूरी थे। असल में वही उसके अस्त्र थे। दाँत भी थे, पर नाखून के बाद ही उनका स्थान था। उन दिनों उसे जूझना पड़ता था, प्रतिद्वंद्वियों को पछाड़ना पड़ता था। नाखून उसके लिए आवश्यक अंग था। फिर धीरे-धीरे वह अपने अंग से बाहर की वस्तुओं का सहारा लेने लगा। पत्थर के ढेले और पेड़ की डालें काम में लाने लगा (रामचंद्रजी की वानरी सेना के पास ऐसे ही अस्त्र थे)। उसने हड्डियों के भी हथियार बनाए। इन हड्डी के हथियारों में सबसे मजबूत और सबसे ऐतिहासिक था देवताओं के राजा का वज्र, जो दधीचि मुनि की हड्डियों से बना था। मनुष्य और आगे बढ़ा। उसने धातु के हथियार बनाए। जिनके पास लोहे के शस्त्र और अस्त्र थे, वे विजयी हुए। देवताओं के राजा तक को मनुष्यों के राजा से इसलिए सहायता लेनी पड़ती थी कि मनुष्यों के राजा के पास लोहे के अस्त्र थे। असुरों के पास अनेक विद्याएँ थीं, पर लोहे के अस्त्र नहीं थे, शायद घोड़े भी नहीं थे। आर्यों के पास ये दोनों चीजें थी। आर्य विजयी हुए। फिर इतिहास अपनी गति से बढ़ता गया। नाग हारे, सुपर्ण हारे, यक्ष हारे, गंधर्व हारे, असुर हारे, राक्षस हारे। लोहे के अस्त्रों ने बाजी मार ली। इतिहास आगे बढ़ा। पलीते-वाली बंदूकों ने, कारतूसों ने, तोपों ने, बमों ने, बमवर्षक वायुयानों ने इतिहास को किस कीचड़-भरे घाट तक घसीटा है, यह सबको मालूम है। नख-धर मनुष्य अब एटम-बम पर भरोसा करके आगे की ओर चल पड़ा है। पर उसके नाखून अब भी बढ़ रहे हैं। अब भी प्रकृति मनुष्य को उसके भीतरवाले अस्त्र से वंचित नहीं कर रही है, अब भी वह याद दिला

देती है कि तुम्हारे नाखून को भुलाया नहीं जा सकता। तुम वही लाख वर्ष पहले के नखदंतावलंबी जीव हो – पशु के साथ एक ही सतह पर विचरनेवाले और चरनेवाले।

ततः किम्। मैं हैरान होकर सोचता हूँ कि मनुष्य आज अपने बच्चों को नाखून न काटने के लिए डाँटता है। किसी दिन – कुछ थोड़े लाख वर्ष पूर्व – वह अपने बच्चों को नाखून नष्ट करने पर डाँटता रहा होगा। लेकिन प्रकृति है कि वह अब भी नाखून को जिलाए जा रही है और मनुष्य है कि वह अब भी उसे काटे जा रहा है। वे कंबख्त रोज बढ़ते हैं, क्योंकि वे अंधे हैं, नहीं जानते कि मनुष्य को इससे कोटि-कोटि गुना शक्तिशाली अस्त्र मिल चुका है। मुझे ऐसा लगता है कि मनुष्य अब नाखून को नहीं चाहता। उसके भीतर बर्बर-युग का कोई अवशेष रह जाय, यह उसे असह्य है। लेकिन यह कैसे कहूँ। नाखून काटने से क्या होता है? मनुष्य की बर्बरता घटी कहाँ है, वह तो बढ़ती जा रही है। मनुष्य के इतिहास में हिरोशिमा का हत्याकांड बार-बार थोड़े ही हुआ है? यह तो उसका नवीनतम रूप है। मैं मनुष्य के नाखून की ओर देखता हूँ, तो कभी-कभी निराश हो जाता हूँ। ये उसकी भयंकर पाशवी वृत्ति के जीवन प्रतीक हैं। मनुष्य की पशुता को जितनी बार भी काट दो, वह मरना नहीं जानती।

कुछ हजार साल पहले मनुष्य ने नाखून को सुकुमार विनोदों के लिए उपयोग में लाना शुरू किया था। वात्स्यायन के 'कामसूत्र' से पता चलता है कि आज से दो हजार वर्ष पहले का भारतवासी नाखूनों को जमके सँवारता था। उनके काटने की कला काफी मनोरंजक बताई गई है। त्रिकोण, वर्तुलाकार, चंद्राकार, दंतुल आदि विविध आकृतियों के नाखून उन दिनों विलासी नागरिकों के न जाने किस काम आया करते थे। उनको सिक्थक (मोम) और अलक्तक (आलता) से यत्नपूर्वक रगड़कर लाल और चिकना बनाया जाता था। गौड़ देश के लोग उन दिनों बड़े-बड़े नखों को पसंद करते थे और दाक्षिणात्य लोग छोटे नखों को। अपनी-अपनी रुचि है, देश की भी और काल की भी। लेकिन समस्त अधोगामिनी वृत्तियों की ओर नीचे खींचनेवाली वस्तुओं को भारतवर्ष ने मनुष्योचित बनाया है, यह बात चाहूँ भी तो भूल नहीं सकता।

मानव-शरीर का अध्ययन करनेवाले प्राणि-विज्ञानियों का निश्चित मत है कि मानव-चित्त की भाँति मानव-शरीर में भी बहुत-सी अभ्यासजन्य सहज वृत्तियाँ रह गई हैं। दीर्घकाल तक उनकी आवश्यकता रही है। अतएव शरीर ने अपने भीतर एक ऐसा गुण पैदा कर लिया है कि वे वृत्तियाँ अनायास ही, और शरीर के अनजान में भी, अपने-आप काम करती है। नाखून का बढ़ना उसमें से एक है, केश का बढ़ना दूसरा है, दाँत का दुबारा उठना तीसरा है, पलकों का गिरना चौथा है। और असल में सहजात वृत्तियाँ अनजान की स्मृतियाँ को ही कहते हैं। हमारी भाषा में भी इसके उदाहरण मिलते हैं। अगर आदमी अपने शरीर की, मन की और वाक् की अनायास घटनेवाली वृत्तियों के विषय में विचार करे, तो उसे अपनी वास्तविक प्रवृत्ति पहचानने में बहुत सहायता मिले। पर कौन सोचता है? सोचना तो क्या, उसे इतना भी पता नहीं चलता कि

उसके भीतर नख बढ़ा लेने की जो सहजात वृत्ति है, वह उसके पशुत्व का प्रमाण है। उन्हें काटने की जो प्रवृत्ति है, वह उसकी मनुष्यता की निशानी है और यद्यपि पशुत्व के चिह्न उसके भीतर रह गए हैं, पर वह पशुत्व को छोड़ चुका है। पशु बनकर वह आगे नहीं बढ़ सकता। उसे कोई और रास्ता खोजना चाहिए। अस्त्र बढ़ाने की प्रवृत्ति मनुष्यता की विरोधिनी है।

मेरा मन पूछता है – किस ओर? मनुष्य किस ओर बढ़ रहा है? पशुता की ओर या मनुष्यता की ओर? अस्त्र बढ़ाने की ओर या अस्त्र काटने की ओर? मेरी निर्बोध बालिका ने मानो मनुष्य जाति से ही प्रश्न किया है – जानते हो, नाखून क्यों बढ़ते हैं? यह हमारी पशुता के अवशेष हैं। मैं भी पूछता हूँ – जानते हो, ये अस्त्र-शस्त्र क्यों बढ़ रहे हैं? ये हमारी पशुता की निशानी हैं।

भारतीय भाषाओं में प्रायः ही अँग्रेजी के 'इंडिपेंडेस' शब्द का समानार्थक शब्द नहीं व्यवहृत होता। 15 अगस्त को जब अँग्रेजी भाषा के पत्र 'इंडिपेंडेन्स' की घोषणा कर रहे थे, देशी भाषा के पत्र 'स्वाधीनता दिवस' की चर्चा कर रहे थे। 'इंडिपेंडेन्स' का अर्थ है अनधीनता या किसी की अधीनता का अभाव, पर 'स्वाधीनता' शब्द का अर्थ है अपने ही अधीन रहना। अँग्रेजी में कहना हो, तो 'सेल्फडिपेंडेन्स' कह सकते हैं। मैं कभी-कभी सोचता हूँ कि इतने दिनों तक अँग्रेजी की अनुवर्तिता करने के बाद भी भारतवर्ष 'इंडिपेंडेन्स' को अनधीनता क्यों नहीं कह सका? उसने अपनी आजादी के जितने भी नामकरण किए स्वतंत्रता, स्वराज्य, स्वाधीनता – उन सबमें 'स्व' का बंधन अवश्य रखा। यह क्या संयोग की बात है या हमारी समूची परंपरा ही अनजान में, हमारी भाषा के द्वारा प्रकट होती रही है? मुझे प्राणि-विज्ञानी की बात फिर याद आती है – सहजात वृत्ति अनजानी स्मृतियों का ही नाम है। स्वराज होने के बाद स्वभावतः ही हमारे नेता और विचारशील नागरिक सोचने लगे हैं कि इस देश को सच्चे अर्थ में सुखी कैसे बनाया जाय। हमारे देश के लोग पहली बार यह सब सोचने लगे हों, ऐसी बात नहीं है। हमारा इतिहास बहुत पुराना है, हमारे शास्त्रों में इस समस्या को नाना भावों और नाना पहलुओं से विचारा गया है। हम कोई नौसिखुए नहीं है, जो रातों-रात अनजान जंगल में पहुँचाकर अरक्षित छोड़ दिए गए हों। हमारी परंपरा महिमामयी उत्तराधिकार विपुल और संस्कार उज्ज्वल हैं। हमारे अनजान में भी ये बातें हमें एक खास दिशा में सोचने की प्रेरणा देती हैं। यह जरूर है कि परिस्थितियाँ बदल गई है। उपकरण नए हो गए हैं और उलझनों की मात्रा भी बहुत बढ़ गई है, पर मूल समस्याएँ बहुत अधिक नहीं बदली हैं। भारतीय चित्त जो आज भी 'अनधीनता' के रूप में न सोचकर 'स्वाधीनता' के रूप में सोचता है, वह हमारे दीर्घकालीन संस्कारों का फल है। वह 'स्व' के बंधन को आसानी से नहीं छोड़ सकता। अपने आप पर अपने-आपके द्वारा लगाया हुआ बंधन हमारी संस्कृति की बड़ी भारी विशेषता है। मैं ऐसा तो नहीं मानता कि जो कुछ हमारा पुराना है, जो कुछ हमारा विशेष है, उससे हम चिपटे ही रहें। पुराने का 'मोह' सब समय वांछनीय ही नहीं होता। मरे

बच्चे को गोद में दबाए रहनेवाली 'बँदरिया' मनुष्य का आदर्श नहीं बन सकती। परंतु मैं ऐसा भी नहीं सोच सकता कि हम नई अनुसंधित्सा के नशे में चूर होकर अपना सरबस खो दें। कालिदास ने कहा था कि सब पुराने अच्छे नहीं होते, सब नए खराब ही नहीं होते। भले लोग दोनों की जाँच कर लेते हैं, जो हितकर होता है उसे ग्रहण करते हैं, और मूढ़ लोग दूसरों के इशारे पर भटकते रहते हैं। सो, हमें, परीक्षा करके हिकर बात सोच-लेनी होगी और अगर हमारे पूर्वसंचित भंडार में वह हितकर वस्तु निकल आए, तो इससे बढ़कर और क्या हो सकता है?

जातियाँ इस देश में अनेक आई हैं। लड़ती-झगड़ती भी रही हैं, फिर प्रेम पूर्वक बस भी गई हैं। सभ्यता की नाना सीढ़ियों पर खड़ी और नाना और मुख करके चलनेवाली इन जातियों के लिए एक सामान्य धर्म खोज निकालना कोई सहज बात नहीं थी। भारतवर्ष के ऋषियों ने अनेक प्रकार से इस समस्या को सुलझाने की कोशिश की थी। पर एक बात उन्होंने लक्ष्य की थी। समस्त वर्णों और समस्त जातियों का एक सामान्य आदर्श भी है। वह है अपने ही बंधनों से अपने को बाँधना।

मनुष्य पशु से किस बात में भिन्न है। आहार-निद्रा आदि पशु सुलभ स्वभाव उसके ठीक वैसे ही है, जैसे अन्य प्राणियों के। लेकिन वह फिर भी पशु से भिन्न है। उसमें संयम है, दूसरे के सुख-दुख के प्रति समवेदना है, श्रद्धा है, तप है, त्याग है। यह मनुष्य के स्वयं के उद्भावित बंधन हैं। इसीलिए मनुष्य झगड़े-टंटे को अपना आदर्श नहीं मानता, गुस्से में आकर चढ़ दौड़नेवाले अविवेकी को बुरा समझता है और वचन, मन और शरीर से किए गए असत्याचरण को गलत आचरण मानता है। यह किसी भी जाति या वर्ण या समुदाय का धर्म नहीं है। यह मनुष्यमात्र का धर्म है। महाभारत में इसीलिए निर्वैर भाव, सत्य और अक्रोध को सब वर्णों का सामान्य धर्म कहा है :

एतद्धि त्रितयं श्रेष्ठं सर्वभूतेषु भारत।
निर्वैरता महाराज सत्यमक्रोध एव च।।

अन्यत्र इसमें निरंतर दानशीलता को भी गिनाया गया है (अनुशासन प., 120. 10)। गौतम ने ठीक ही कहा था कि मनुष्य की मनुष्यता यही है कि वह सबके दुख सुख को सहानुभूति के साथ देखता है। यह आत्म निर्मित बंधन ही मनुष्य को मनुष्य बनाता है। अहिंसा, सत्य और अक्रोधमूलक धर्म का मूल उत्स यही है। मुझे आश्चर्य होता है कि अनजान में भी हमारी भाषा में यह भाव कैसे रह गया है। लेकिन मुझे नाखून के बढ़ने पर आश्चर्य हुआ था। अज्ञान सर्वत्र आदमी को पछाड़ता है। और आदमी है कि सदा उससे लोहा लेने को कमर कसे है।

मनुष्य को सुख कैसे मिलेगा? बड़े-बड़े नेता कहते हैं, वस्तुओं की कमी है, और मशीन बैठाओ, और उत्पादन बढ़ाओ, और धन की वृद्धि करो और बाह्य उपकरणों की ताकत बढ़ाओ। एक बूढ़ा कहता था –

बाहर नहीं, भीतर की ओर देखो। हिंसा को मन से दूर करो, मिथ्या को हटाओ, क्रोध और द्वेष को दूर करो, लोक के लिए कष्ट सहो, आराम की बात मत सोचो, प्रेम की बात सोचो, आत्म तोषण की बात सोचो, काम करने की बात सोचो। उसने कहा – प्रेम ही बड़ी चीज है, क्योंकि वह हमारे भीतर है। उच्छृंखलता पशु की प्रवृत्ति है, 'स्व' का बंधन मनुष्य का स्वभाव है। बूढ़े की बात अच्छी लगी या नहीं, पता नहीं। उसे गोली मार दी गई, आदमी के नाखून बढ़ने की प्रवृत्ति ही हावी हुई। मैं हैरान होकर सोचता हूँ – बूढ़े ने कितनी गहराई में पैठकर मनुष्य की वास्तविक चरितार्थता का पता लगाया था।

ऐसा कोई दिन आ सकता है, जबकि मनुष्य के नाखूनों का बढ़ना बंद हो जाएगा। प्राणिशास्त्रियों का ऐसा अनुमान है कि मनुष्य का अनावश्यक अंग उसी प्रकार झड़ जाएगा, जिस प्रकार उसी पूँछ झड़ गई है। उस दिन मनुष्य की पशुता भी लुप्त हो जाएगी। शायद उस दिन वह मारणास्त्रों का प्रयोग भी बंद कर देगा। तब तक इस बात से छोटे बच्चों को परिचित करा देना वांछनीय जान पड़ता है कि नाखून का बढ़ना मनुष्य के भीतर की पशुता की निशानी है और उसे नहीं बढ़ने देना मनुष्य की अपनी इच्छा है, अपना आदर्श है। बृहत्तर जीवन में रोकना मनुष्यत्व का तकाजा है। मनुष्य में जो घृणा है, जो अनायास – बिना सिखाए – आ जाती है, वह पशुत्व का द्योतक है और अपने को संयत रखना, दूसरे के मनोभावों का आदर करना मनुष्य का स्वधर्म है। बच्चे यह जानें तो अच्छा हो कि अभ्यास और तप से प्राप्त वस्तुएँ मनुष्य की महिमा को सूचित करती हैं।

सफलता और चरितार्थता में अंतर है। मनुष्य मारणास्त्रों के संचयन से, बाह्य उपकरणों के बाहुल्य से उस वस्तु को पा भी सकता है, जिसे उसने बड़े आडंबर के साथ सफलता का नाम दे रखा है। परंतु मनुष्य की चरितार्थता प्रेम में है, मैत्री में है, त्याग में है, अपने को सबके मंगल के लिए निःशेष भाव से दे देने में है। नाखूनों का बढ़ना मनुष्य की उस अंध सहजात वृत्ति का परिणाम है, जो उसके जीवन में सफलता ले आना चाहती है, उसको काट देना उस स्व-निर्धारित, आत्म-बंधन का फल है, जो उसे चरितार्थता की ओर ले जाती है।

नाखून बढ़ते हैं तो बढ़ें, मनुष्य उन्हें बढ़ने नहीं देगा।

renaiss

मध्यप्रदेश की लोक कलाऐं

लोक कलाएँ - लोककला का सामान्य अर्थ है, एक ऐसी कला जो लोगों में पारम्परिक रूप से विद्यमान है। लोककला, लोक संस्कृति के संदर्भ में निर्मित सभी प्रकार की दृश्य कलाओं को सम्मिलित करती है। लोक कलाएँ एक समुदाय के सांस्कृतिक जीवन को निरूपित करती हैं। कला के रूप में लोक कलाओं में सांस्कृतिक विरासत के क्षेत्र से जुडी अभिव्यंजक संस्कृति समाहित है। भारत की विभिन्न जातियों व जनजातियों में पीढी दर पीढी चली आ रही पारंपरिक कलाओं को 'लोककला' कहते हैं।

स्थानीय समुदाय की सम्पूर्ण कलात्मक गतिविधि सामान्यतः ग्रामीणों की कलाओं को लोक कलाओं के रूप में जाना जाता है। रचनात्मकता के अतिरिक्त लोक कलाओं में संगीत, किवंदतियाँ, परियों की कहानियाँ, लोक कविता तथा लोक रीति-रिवाजों के समकलात्मक नृत्य, पक्ष भी सम्मिलित हैं।

मध्यप्रदेश की लोक कलाऐं मध्यप्रदेश भारत की हृदयस्थली होने के साथ-साथ कलास्थली भी है। प्राचीनकाल से ही मध्यप्रदेश की एक गौरवशाली परम्परा रही है। यहाँ की कला, लोककला, साहित्य एवं लोक साहित्य अत्यंत समृद्ध है, प्रकृति के साथ गहराई से जुड़े होने के कारण उनके प्राकृतिक रंग-रूप का सौन्दर्य सहजता से पल्लवित एवं पुष्पित हुआ है। मध्यप्रदेश की लोक-संस्कृति भारतीय संस्कृति के मूल्यों से अनुप्रमाणित होते हुए भी निजता और विशिष्टता के कारण स्वतंत्र पहचान बनाए हुए है।

मध्यप्रदेश की लोककला में प्राकृतिक रंग, लोकचित्र, शिल्प एवं लोकनृत्य प्रमुख हैं। भोपाल में स्थित भारत भवन एवं आदिवासी लोककला अकादमी का विभिन्न कलाओं एवं लोक कलाओं के उन्नयन में उल्लेखनीय योगदान रहा है। मध्यप्रदेश के कलाकार एवं लोक कलाओं के कारण ही यूनेस्को द्वारा विश्व विरासत में खजुराहो में मंदिर, साँची बौद्ध स्तूप

मध्यप्रदेश की लोक कलाओं का विस्तृत विवरण:

लोक चित्रकला:

मालवा: मंडाना (फर्श और दीवारों पर)।

निमाड़: जिरोती, थापा, संझाफुली।

बुंदेलखंड: सुरैती, मामुलिया, चौक, मोर मुरैला।

बघेलखंड: कोहबर, तिलंगा।

आदिवासी कला: भीलों की पिथोरा (भील या पिथोरा पेंटिंग) और गोंड जनजाति की गोंड पेंटिंग।

लोक नृत्य:

मालवा: मटकी नृत्य, आड़ा-खड़ा नृत्य।

निमाड़: गणगौर, काठी, फाफरिया, मदाल्या, डंडा नृत्य।

RENAISSANCE

बुंदेलखंड: राई नृत्य (राज्य नृत्य), बधाई, ढीमरिया, सैरा, जवारा।

बघेलखंड: दादर, कहरवा, कलसा।

लोक शिल्प (हस्तशिल्प):

धातु शिल्प: ढोकरा कला (बेटुल), बेल मेटल (टीकमगढ़)।

गुड़िया शिल्प: बट्टो बाई की गुड़िया (झाबुआ)।

टेराकोटा: मिट्टी के खिलौने और मूर्तियां (बघेलखंड और बुंदेलखंड)।

प्रिंट: बाघ प्रिंट (धार), बटिक प्रिंट, नंदना प्रिंट।

वस्त्र: चंदेरी और महेश्वरी साड़ियाँ।

अन्य: बांस शिल्प (शहडोल, बालाघाट), पेपर मैशे (उज्जैन)।

इन कलाओं का प्रदर्शन अक्सर 'लोक रंग महोत्सव' (होलिदीफी जैसे आयोजनों में किया जाता है।

RENAISSANCE

CHAPTER – 7

मध्य प्रदेश का लोक साहित्य

मध्य प्रदेश का लोक साहित्य अत्यंत समृद्ध है, जो मुख्य रूप से चार सांस्कृतिक अंचलों—बुंदेली, बघेली, मालवी, और निमाड़ी में विभाजित है। इसमें लोकगीत (फाग, सोहर), लोकगाथाएं (आल्हा-ऊदल), लोकनाट्य (माच, गम्मत), और भक्त कवियों (ईसूरी, सिंगाजी) की निर्गुनिया रचनाएं शामिल हैं। यह साहित्य प्रदेश की जनजातीय (गोंड, भील) परंपराओं का सजीव चित्रण करता है।

मध्य प्रदेश का लोक साहित्य: प्रमुख अंचल और विधाएं

मध्य प्रदेश के लोक साहित्य को क्षेत्रीय बोलियों के आधार पर संकलित किया जा सकता है: बुंदेली लोक साहित्य: बुंदेलखंड क्षेत्र में अत्यधिक लोकप्रिय, जिसके प्रमुख स्तंभ ईसूरी की फागें (श्रृंगार और प्रेम) हैं। यहाँ की आल्हा-ऊदल की वीर गाथा (जगनिक द्वारा रचित) विश्व प्रसिद्ध है।

निमाड़ी लोक साहित्य: यहाँ की संस्कृति में निर्गुनिया भजन, संत सिंगाजी के पद, और गरबी नृत्य के गीत महत्वपूर्ण हैं।

मालवी लोक साहित्य: इसमें संजा गीत, हीड़ गायन और भरथरी लोककथाएं प्रचलित हैं।

बघेली लोक साहित्य: बघेली लोकगीतों और लोककथाओं में फाग, कहरवा और बिरहा का विशेष स्थान है।

लोक साहित्य की प्रमुख विधाएं (Genres):

लोकगीत: विवाह गीत, संस्कार गीत (सोहर), ऋतु गीत (कजरी), और फाग।

लोकगाथाएं: आल्हा-खंड, भोलानाथ की गाथा, गम्मत।

लोककथा/वार्ता: पौराणिक व स्थानीय कथाएं (जैसे गेंदा-दमन की कथा)।

लोकनाट्य: माच (मालवा), रासलीला, स्वांग।

लोक संगीत व वाद्य: निर्गुनिया भजन, इकतारा, खड़ताल, झांझ, मृदंग।

प्रमुख लोक साहित्यकार (लोक कवि):

ईसूरी: बुंदेली फाग के बेताज बादशाह।

संत सिंगाजी: निमाड़ के भक्त कवि।

जगनिक: आल्हा-खंड के रचयिता।

मध्य प्रदेश जनजातीय संग्रहालय (भोपाल) और अन्य संस्थाएं इस वाचिक परंपरा को पुस्तकों व रिकॉर्डिंग के माध्यम से संरक्षित कर रही हैं।

RENAISSANCE

UNIT – 3

मुहावरे (Idioms) और कहावतें (Proverbs) हिंदी भाषा को प्रभावशाली, रोचक और संक्षिप्त बनाने के शक्तिशाली उपकरण हैं। मुहावरे विशेष अर्थ वाले वाक्यांश होते हैं जो अक्सर 'ना' शब्द पर खत्म होते हैं (जैसे- 'अंगूठा दिखाना' = धोखा देना)। वहीं, कहावतें पूर्ण वाक्य होते हैं जो जीवन के अनुभव पर आधारित शिक्षाप्रद सलाह देते हैं (जैसे- 'अंधेर नगरी चौपट राजा')।

प्रमुख हिंदी मुहावरे (Idioms)

मुहावरों का अर्थ सामान्य शब्दों से भिन्न और लाक्षणिक होता है।

- अक्ल का दुश्मन (बेवकूफ): उसने इतना समझाया, फिर भी वह समझता नहीं, क्योंकि वह तो अक्ल का दुश्मन है।
- अंधे की लकड़ी (एकमात्र सहारा): वह अपने मां-बाप के लिए अंधे की लकड़ी है।
- अंगूठा दिखाना (समय पर धोखा देना): उसने अपना काम निकाल लिया, परन्तु जब मुझे जरूरत पड़ी तो अंगूठा दिखा दिया।
- अंगारों पर लोटना (दुख सहना या डाह होना): वह बचपन से ही अंगारों पर लोटता रहा है।
- नाक कटना (बेइज्जती होना): बेटे की इस हरकत से समाज में पिता की नाक कट गई।

प्रमुख हिंदी कहावतें (Proverbs)

कहावतें स्वतंत्र वाक्य होती हैं और वे अपने मूल रूप में ही प्रयोग की जाती हैं।

- बंदर क्या जाने अदरक का स्वाद: मूर्ख व्यक्ति किसी अच्छी चीज़ की कद्र नहीं कर सकता।
- अंधेर नगरी चौपट राजा: जहाँ नियम-कानून न हो और मुखिया मूर्ख हो, वहाँ अन्याय होता है।

RENAISSANCE

- अब पछताए होत क्या जब चिड़िया चुग गई खेत: समय निकलने के बाद पछताने से कोई फायदा नहीं होता।

- अंधों में काना राजा: मूर्खों के बीच कम ज्ञान वाला भी बुद्धिमान समझा जाता है।

- एक पंथ दो काज: एक साथ दो कामों का पूरा हो जाना।

- **मुहावरे और कहावत में अंतर (Difference)**

मुहावरा मूलतः एक वाक्यांश हैं, उसमें स्वतंत्र वाक्य बनाने की क्षमता नहीं होती हैं। वह उपयुक्त वाक्य का ही अंग बन जाता हैं।	लोकोक्ति का प्रयोग अधिकत्तर स्वतंत्र वाक्य के रुप में ही होता हैं।
मुहावरे विकारी होते हैं, अर्थात् वाक्यानुसार इनका अर्थ बदल जाता हैं।	यह अविकारी होते हैं, जिनका अर्थ नहीं बदलता हैं।
मुहावरे संक्षिप्त रुप में होते हैं।	लोकोक्तियाँ विस्तृत रुप में होती हैं।
उदा. अक्ल पर पत्थर पढ़ना।	**उदा.** मन के हारे हार हैं मन के जीते जीत

समास

समास का तात्पर्य है 'संक्षिप्तीकरण'। अतः इसका शाब्दिक अर्थ होता है छोटा रूप; अर्थात जब दो या दो से अधिक शब्दों से मिलकर जो नया और छोटा शब्द बनता है उस शब्द को समास कहते हैं।

- समास के भेद
- अव्ययीभाव समास
- तत्पुरुष समास
- कर्मधारय समास
- द्विगु समास
- द्वन्द समास
- बहुव्रीहि समास

समास के प्रकार और परिभाषाएँ:

अव्ययीभाव समास: जिस समास का पहला पद प्रधान और अव्यय (अपरिवर्तनीय) हो।

RENAISSANCE

उदाहरण: यथाशक्ति (शक्ति के अनुसार), प्रतिदिन।

तत्पुरुष समास : जिस समास में उत्तरपद (दूसरा पद) प्रधान हो और दोनों पदों के बीच कारक चिन्ह का लोप हो।

उदाहरण: राजपुत्र (राजा का पुत्र), रसोईघर (रसोई के लिए घर)।

कर्मधारय समास: जिस समास में पूर्वपद और उत्तरपद में विशेषण-विशेष्य या उपमान-उपमेय का संबंध हो।

उदाहरण: नीलकमल (नीला है जो कमल), महापुरुष।

द्विगु समास: जिस समास का पहला पद संख्यावाचक विशेषण हो और वह समूह का बोध कराए।

उदाहरण: चौराहा (चार राहों का समूह), त्रिलोक।

द्वंद्व समास: जिस समास में दोनों पद प्रधान हों और उनके बीच 'और', 'या', 'अथवा' का लोप हो।

उदाहरण: माता-पिता (माता और पिता), सुख-दुःख।

बहुव्रीहि समास: जिस समास में कोई भी पद प्रधान न होकर, दोनों पद मिलकर किसी तीसरे विशेष अर्थ (अर्थ) को प्रकट करें।

उदाहरण: लंबोदर (लंबा है उदर जिनका - गणेश), नीलकंठ (शिव)।

बीज शब्द

1. उद्योग (Industry)

उद्योग वह व्यवस्था है जिसमें लोग संगठित रूप से वस्तुओं या सेवाओं का उत्पादन करते हैं।
इसमें मशीनें, पूंजी (पैसा), श्रमिक और तकनीक का उपयोग होता है।
उद्योग तीन प्रकार के होते हैं:

प्राथमिक उद्योग – जैसे कृषि, खनन
द्वितीयक उद्योग – जैसे कारखाने, निर्माण कार्य
तृतीयक उद्योग – जैसे बैंक, शिक्षा, परिवहन
उद्योग देश की अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाता है और रोजगार देता है।

RENAISSANCE

2. सभ्यता (Civilization)

सभ्यता किसी समाज के बाहरी विकास को दर्शाती है।
इसमें शहरों का निर्माण, सड़कें, कानून, शासन-व्यवस्था, विज्ञान और तकनीक शामिल होते हैं।
जब समाज व्यवस्थित और उन्नत जीवन जीने लगता है, तो उसे सभ्य कहा जाता है।

उदाहरण: सिंधु घाटी सभ्यता एक प्राचीन विकसित सभ्यता थी, जहाँ पक्की सड़कों और नालियों की व्यवस्था थी।

3. संस्कृति (Culture)

संस्कृति समाज की आत्मा होती है।
यह लोगों की सोच, विश्वास, परंपराएँ, कला, साहित्य, धर्म और जीवन-मूल्यों को दर्शाती है।
संस्कृति पीढ़ी दर पीढ़ी चलती रहती है।
यह बताती है कि लोग कैसे सोचते हैं और कैसे व्यवहार करते हैं।
सभ्यता बाहरी रूप है, संस्कृति आंतरिक रूप है।

4. सूचना समाज (Information Society)

सूचना समाज वह समाज है जहाँ ज्ञान और जानकारी सबसे बड़ी शक्ति मानी जाती है।
यह डिजिटल तकनीक और इंटरनेट पर आधारित होता है।
आज के समय में मोबाइल, कंप्यूटर और इंटरनेट के माध्यम से लोग शिक्षा, व्यापार, बैंकिंग और संचार करते हैं।
21वीं सदी को सूचना क्रांति का युग भी कहा जाता है।

RENAISSANCE